

स्वामी परमानन्द जी — संक्षिप्त परिचय

एवं

उनके द्वारा स्थापित आश्रम तथा गायत्री संबन्धी विचार

स्वामी परमानन्द जी को भक्तजन महाराजी (महाराज जी) कहते थे। महाराजी अपने विषय में प्रचार का अनुमोदन कदापि नहीं करते थे, अपितु निषेध (मना) ही करते थे, फिर भी, उनसे अपरिचित जिज्ञासुओं को उनकी स्थिति का कुछ अनुमान हो सके, तज्जनित (उस से उत्पन्न) उनके अधिकार के स्तर का बोध हो सके तथा उसके फलस्वरूप उनके उपदेश के प्रति ग्रहणशीलता जागृत हो सके, इस उद्देश्य से उनका यत्किञ्चित् परिचय दिया जाता है। स्वाभाविक है कि यह विवेचन लेखक की अपनी क्षमता की अति संकीर्ण सीमा के कारण जड़मति द्वारा महदारंभ का ही उदाहरण है।

स्वामी परमानन्द जी ब्रह्मनिष्ठ, नित्यसहजस्वरूपस्थ महात्मा थे। ज्ञान (वेदान्त, सांख्य), योग, भक्ति तथा निष्काम कर्मयोग सभी उनमें संपूर्ण रूप से विकसित थे तथा ज्ञान-विज्ञान (सिद्धान्तज्ञान तथा व्यावहारिक जीवन में उसे जीने की कला) में वे पारंगत थे। अवस्थाओं तथा गुणों से वे सहज ही अतीत थे। 'ब्रह्मपद आयासरहित है' (अर्थात् ब्रह्मज्ञ महात्मा की सहज स्वाभाविक अनायास ब्रह्मपद में अच्युत अवस्थिति रहती है) की योग-वासिष्ठ की घोषणा के वे मूर्तिमान उदाहरण थे। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' में उनकी सहज अच्युत अवस्था थी। 'आनन्द के बीच में' उनका तकिया कलाम (वार्तालाप के समय प्रयुक्त शब्द-समुच्चय अथवा वाक्यांश) था और आनन्द के बीच ही वे सदा रहते थे। किस प्रकार अहंकार समाप्त हो जाने पर तथा तत्त्वस्थ हो जाने पर भी एक महात्मा द्वारा अविरत रूप से कर्म का अनुपालन हो सकता है, यह उन्हें देख-समझ कर भक्तों की बुद्धि सहज ही ग्रहण कर पाती थी। 'वास्तविक निष्काम कर्मयोग तो ब्रह्मज्ञ का ही सध सकता है', ऐसी उनकी उक्ति उनके द्वारा आचरित कर्मों में स्पष्ट चरितार्थ थी।

भक्ति-मार्ग में भगवान की इच्छा ही धर्म है, उनके एक भजन में वर्णित धर्म की परिभाषा — 'जो तोहे भावे धर्म है, दूजा सभी असार' उनकी पराभक्ति की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करती है। भक्ति-मार्ग की प्रथम आवश्यकता कि 'भक्त का सबकुछ भगवान पर निछावर हो' तथा उस पर उनका आचरण, उनके एक

भजन के अंश से स्पष्ट है 'अहं आत्मा ब्रह्म हूं, यह ज्ञान समरपू तोय, प्रगट हो अब न करो देरी'। चराचर में भगवान का रूप देखने की भक्त की सहज स्वाभाविक स्थिति तथा इसी में महाराजी की अवस्थिति का वर्णन उनके एक भजन में द्रष्टव्य है — 'तेरा यह खेल अपारा है, जित देखूं तित तू ही तू है'।

योग-मार्ग की साधना के सोपानों का वर्णन करनेवाला उनका भजन — 'गगन मंडल में जो जन जाकर, सुने बेहद अनहद बानी, सातों रंग निरखता वहां पर, हो जावे पूरण ज्ञानी' सूक्ष्मता तथा विस्तृत वर्णन की दृष्टि से योग-साहित्य में अद्वितीय है।

सच्चे ज्ञान के उपदेश की प्राथना एक बार एक गांव में श्रोताओं द्वारा किये जाने पर उनका 'हम न तुम दफ़्तर गुम' कहना विशुद्ध अद्वैत ज्ञान में उनकी अवस्थिति से ही संभव है। यही स्थिति उनके दो भजनों की उक्तियों से स्पष्ट है — 'एक ही परमानन्द विराजे, नहिं छाया नहीं धूप' तथा 'ज्योति बिना कछु और नहीं है, अहं ज्योति है ज्ञान यही है'।

निष्काम कर्मयोग का उदाहरण तो अर्धमरुस्थलीय और पानी के अभाव से संत्रस्त रेवाड़ी (हरियाणा) प्रदेश में उनके द्वारा कँटीली जमीन में २५० बीघे के विशाल क्षेत्र में स्थापित, सरोवर तथा अनेक कूपों से युक्त, छायादार तथा दीर्घायु वृक्षों से सघन आश्रम को देखकर, सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी समझ सकता था। सन् १९१५ से सन् १९३६ ईस्वी तक के समय में वे इस आश्रम में भक्तों के मध्य रहे। इस आश्रम की विधिवत् स्थापना सन् १९१८ में हुई तथा इसका नाम 'श्री भगवद्भक्ति आश्रम' रक्खा गया। इससे पूर्व सन् १९१५ से ही इस क्षेत्र में महाराजी आते जाते रहे थे।

धर्म के आचरण के विषय में उनकी दृष्टि की सूक्ष्मता तथा कर्म के उद्देश्य के निर्धारण में अन्तःकरण की पूर्ण शुद्धि की आवश्यकता पर उनके बल देने का बोध निम्नलिखित प्रसंग से सहज ही हो जाता है। एक समय की बात है, आश्रम का एक मुख्य ब्रह्मचारी शंकरदेव रिंगण बाय (स्याटिका) से कई मास से ग्रस्त था, पैर में ऐसा दर्द जो सहना कठिन था। आश्रम के वृक्षों की, सेंह (वृक्षों की जड़ खोदकर उन्हें हानि पहुंचाने वाला एक वन्य जीव) से रक्षा हेतु सारी-सारी रात जागकर पहरा दिया जाता था और सेंह को देखते ही मार दिया जाता था। शंकरदेव इसके मुख्य कार्यकर्ता थे। उन्हें कई व्यक्तियों ने सलाह दी कि सेंह का मांस खाने से दर्द ठीक हो जायगा। रोग से दुखी होने के कारण उन्होंने भी मन

में विचारा कि सेंह तो हम वृक्षों की रक्षा हेतु मारते ही हैं तथा हमारी जाति में मांस खाना बुरा भी नहीं समझा जाता, अतः इस बार जब सेंह मारी जाय तो आश्रम के बाहर जाकर उसका मांस पकवाकर खा लिया जाय। अगले दिन प्रातः जब महाराजी को प्रणाम करने गये तो स्वतः ही महाराजी ने कहा — ‘यदि किसी दूसरे की रक्षा के लिये किसी को मरा जाय तो पुण्य होता है और अपने खाने के लिये यदि किसी को मारा जाय तो पाप होता है’। रोगग्रस्त शंकरदेव को भी सूक्ष्म रहस्य स्पष्ट हो गया कि परोपकार से भी यदि अनायास तथा मात्र प्रासंगिक रूप से स्वार्थ-सिद्धि होती हो, तो उस स्वार्थ की अन्तःकरण में स्फुरणा-मात्र भी पाप ही है। महाराजी द्वारा निर्देश पाकर, तारपीन के तेल की मालिश तथा योगराज गुग्गुल का सेवन कर उनका रोग भी ठीक हो गया।

‘जो जीवभाव को दृढ़ करे वह पाप और जो ब्रह्मभाव को दृढ़ करे वह पुण्य कहलाता है’, यह उनका निर्णय था। ‘जो वस्तु ईश्वर के समीप हो वह उत्कृष्ट तथा जो दूर हो वह निकृष्ट कहलाती है’, ऐसा उनका उपदेश था। ‘ईश्वर की उपासना जीवन और प्रकृति की उपासना मरण समझना चाहिये’, ऐसा उनका कथन था। उनके एक भजन में आता है — ‘अहं ब्रह्मास्मि ज्ञान की ज्योति, जग रही है घट-घट परमानन्द की’, यही उन्हें आदर्श रूप में अपेक्षित था।

उदार ऐसे थे कि अपने भक्तों और शिष्यों से कहते कि ‘जहां कहीं साधु सज्जन मिलें, उनका सत्संग करो’। मनुष्यमात्र के लिये उन्होंने दस साधारण नियम निर्धारित किये जो इसी पुस्तिका में प्रारंभ में छपे हैं। ‘साधु सज्जन का सत्संग करो’ भी उनमें से एक है। आश्रम की प्रार्थना में महाराजी द्वारा रचित एक भजन अब भी गाया जाता है, इसमें भगवान के नामों का संकलन है। इसमें ‘अल्ल’ तथा ‘गॉड’ दोनों नामों का उल्लेख है — ‘कृष्णानन्त अचलहं गॉड, हुंफट् अल्ला सर्वपसार’। ‘ॐ ॐ जय श्री कृष्ण की’ यह आश्रम का अभिवादन था तथा ‘हर हर हर महादेव’ यह महाराजी का प्रिय घोष था। अनेक वर्षों तक आश्रम में रामलीला का आयोजन महाराजी ने करवाया। गायत्री के अपने द्वारा किये गये अर्थ के साथ ही स्वामी दयानन्द जी द्वारा किया गया अर्थ उन्होंने आश्रम से प्रकाशित, ‘भक्ति’ नामक मासिक पत्रिका में छपवाया।

असहिष्णुता उनमें तनिक भी न थी। मुसलमान तथा ईसाई जिज्ञासु भी अपनी शंकाओं का समाधान उनसे पाते थे। महाराजी ने ‘सदाचार’ नामक पुस्तक में लिखवाया — ‘सब मतों को, उनकी पुस्तकों को, उनके अवतार, पीर पैगम्बरों को

और अन्य देशों के मनुष्यों को समान दृष्टि से देखना चाहिये'। 'एक ही मत मार्ग का अनुसरण करो', यह समझाते थे, फिर भी समन्वय के प्रेमी थे, यह तो अब तक के विवरण से स्पष्ट ही है।

समदृष्टि ऐसी थी कि किसी के साथ किसी तरह का पक्षपात न हो, इस बात का वे विशेष ध्यान रखते थे। 'सर्व-विद्या तथा समस्त पुस्तकों के पढ़ने में मनुष्य मात्र का अधिकार होना चाहिये', ऐसा उन्होंने 'सदाचार' में लिखवाया। सामूहिकता को महत्त्व देते थे — सभी वर्गों का उत्थान उन्हें अभीष्ट था, विशेषतः सामाजिक रूप से अन्यायग्रस्त स्त्री तथा शूद्र वर्ग का। आश्रम द्वारा समाज के उत्थान हेतु किये गये प्रयासों के प्रकरण में इसका विस्तार से वर्णन है। संगठन का महत्त्व और दलबन्दी की हानि समझाते थे, किसी से विरोध न हो ऐसा प्रयास करने को कहते थे। व्यर्थ का आडंबर उन्होंने सभी जगह अनावश्यक बतलाया और सभी उपासना पद्धतियों तथा जीवन के आदर्शों के तत्त्व का शोध तथा निश्चय कर उसमें जी-जान से लग जाने पर बल दिया करते थे।

चमत्कारों का समर्थन वे नहीं करते थे और आत्मगोपन के स्वभाव वाले थे। सिद्धियों को वे भगवत्प्राप्ति में बाधा ही बताते थे। अपनी प्रशंसा उन्हें स्वीकार न थी। फिर भी उनके जीवन का जितना भाग जिज्ञासु भक्तों के बीच बीतने से प्रकाश में आया उसमें उनकी स्थिति का परिचय पास रहने वालों को अपने बोध और श्रद्धा की सीमा के अनुसार मिलता रहता था। कुछ उदाहरण यहां उद्धृत हैं। संकल्प मात्र से विभिन्न समयों पर कुछ अति सामान्य जिज्ञासुओं को उन्होंने केवल उनकी जिज्ञासा के ही फलस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार कराया जिसकी अनुभूति उन्हें दो-तीन दिन तक रही। भगवत्प्राप्ति की इच्छा प्रकट करने वाले एक भक्त को गोसेवा की आज्ञा दी तथा उसका पूरी अवधि तक पालन कर उस भक्त को भी भगवद्दर्शन हुआ तथा स्थायी रूप से भगवत्प्राप्ति हुई, यद्यपि उस भक्त में आज्ञापालन के अतिरिक्त साधना की और कोई योग्यता न थी तथा महाराजी उससे पहले ही महाप्रयाण कर चुके थे। साथ में रहने वाले व्यक्तियों में विकार के हेतुओं के उपस्थित रहने पर भी विकार जागृत नहीं होता था। देहादिक का बोध सामान्यतया महाराजी को नहीं रहता था — उबलते पानी से पूरा पैर जल जाने पर भी उन्हें भान नहीं हुआ। उनके शरीर त्यागने पर उसे बिना किसी लेप आदि के तथा बिना किसी अन्य प्रकार के संरक्षण के प्रयास के, स्वाभाविक अवस्था में ही, एक शवमंजूषा (ताबूत) में रखकर मिट्टी में समाधि दी

गई। कुछ सप्ताह के बाद एक भक्त को स्वप्न आया कि 'महाराजी ने शरीर नहीं छोड़ा है'। फलस्वरूप समाधि खोदकर शवमंजूषा खोलकर देखी गई तो शरीर में किसी तरह का विकार दृष्टिगोचर नहीं हुआ, अपितु ऐसा प्रतीत हुआ मानो सो रहे हैं। एक वर्ष से कुछ अधिक समय उपरान्त जब समाधि पक्की करने का समय आया तो पुनः शवमंजूषा खोलकर देखी गई — कोई उल्लेखनीय विकार उस समय भी नहीं था यद्यपि सिर के बाल कुछ झड़ गये थे, सामने के दांत कुछ झुक गये थे तथा मुख पर तनिक श्यामता परिलक्षित होती थी।

ईसाई मिशनरियों द्वारा दिल्ली में प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ के आगमन-पूर्व धर्म-परिवर्तन हेतु एकत्रित पचास-हजार अछूतों के, आश्रम में शिक्षा पा रहे अछूत बालकों के मुख से महाराजी का तदर्थ निर्मित भजन 'धरम मत हारो रे, जग में जिन्दगी दिन चार' सुनकर, धर्मपरिवर्तन के अपने निश्चय का त्याग कर देना, महाराजी के द्वारा ही क्रियान्वित हो सकता था।

रेवाड़ी में अपने द्वारा स्थापित 'श्री भगवद्भक्ति आश्रम' के अनुरूप ही एक अपेक्षाकृत काफ़ी छोटे आश्रम की स्थापना जींद में भी उन्होंने की, जिसका बाद में काफ़ी विस्तार हुआ। अन्य अनेक ग्रामों में भी अनेक छोटे-छोटे आश्रम बनाये। देश भर में प्रत्येक दस-दस, पांच-पांच ग्रामों के बीच एक आश्रम हो जो लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन कर सके तथा सामाजिक उन्नति का भी प्रेरणा-केन्द्र हो — ऐसा वे कहते थे। आश्रम के आठ उद्देश्य महाराजी ने निर्धारित किये थे, वे इसी पुस्तिका में पीछे के आवरण-पृष्ठ पर छपे हैं। पहला था — 'श्री भगवान की भक्ति का प्रचार करना'। अन्य उद्देश्य सामाजिक-धार्मिक हैं। आश्रम में निष्काम कर्मयोग की शिक्षा, सभी आश्रमवासियों से तदनुसार आचरण करवाकर, दी जाती थी। निष्काम कर्मयोग को वे 'बड़ी गीता का पाठ' कहते थे। स्वावलंबन की भावना आश्रम का एक प्रमुख सूत्र था। ज्ञान की शिक्षा तथा भक्ति की शिक्षा और अभ्यास भी उसी महत्त्व के थे। आश्रम में ब्रह्मविद्या पढ़ाई जाती है, ऐसा उनका कथन था।

अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में उन्होंने समाज को आश्रम के माध्यम से सोदाहरण दिशा दी — अस्पृश्यता (छुआछूत) मिटाना, सब की शिक्षा का समान प्रबंध, स्त्रियों की शिक्षा का विशेष प्रबंध और उन्हें वेद-शास्त्र आदि की शिक्षा, असवर्णों (हरिजनों) के लिये भी वेद-शास्त्र की शिक्षा का प्रबंध उन्होंने आश्रम में किया।

आदर्शों को जीवन में जीने की कला में वे आश्चर्यजनक रूप से व्यावहारिकता को साधन बनाते थे। अतः गोरक्षा की अनिवार्यता को समझकर भी उन्होंने, मुख्य रूप से गायों कि नसल सुधारकर, उन्हें दुधारू तथा बलिष्ठ बछड़ों के प्रजनन में समर्थ बनाकर तथा इसके फलस्वरूप गौओं की रक्षा में लोगों का आर्थिक स्वार्थ जोड़ देना ही, प्रमुख साधन के रूप में अपनाया। 'जबतक मुर्दा गाय की कीमत जिन्दा गाय से अधिक है, तब तक गोरक्षा संभव नहीं' ऐसा वे समझाते थे। गोरक्षा के आदर्श का क्रियान्वयन आश्रम की गोशाला में हुआ। शुद्ध देसी (हरियाणा) नसल की, साढ़े-तेईस सेर दूध देनेवाली गाय, चयनपूर्वक प्रजनन आदि के द्वारा तीसरी पीढ़ी में ही विकसित कर दी गई। राष्ट्रीय पशु मेलों में आश्रम कि गोशाला के गौ-बछड़ों ने अनेक बार प्रथम पुरस्कार सहित अनेक पदक जीते।

मोतियाबिन्द के रोगियों के लिए निःशुल्क आंखों के ऑपरेशन के कैम्प लगाने का सिलसिला देश में सर्वप्रथम महाराजी की प्रेरणा से ही आश्रम से सन् १९३३ ईस्वी में आरंभ हुआ। इस हेतु एक समिति का गठन हुआ जिसने रावलपिंडी से इलाहाबाद तक अनेक स्थानों पर कैम्प लगाए। आश्रम के ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणियां रोगी रोगिणियों की सेवा करते। देश के सुप्रसिद्ध डाक्टर मथुरादास पाहवा (मोगा मंडी वाले) महाराजी की प्रेरणा से इन मेलों में अपनी टीम सहित निःशुल्क काम करते, इसी के फलस्वरूप जीवन में पांचलाख से अधिक आपरेशन कर उस समय का विश्व-कीर्तिमान (विश्व-रिकार्ड) उन्होंने स्थापित किया।

मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है, यह उनका निर्णय था। जीवन की समस्त दिशा तथा प्रयास इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जायें, ऐसा उनका उपदेश था। मनुष्य मात्र के लिये निर्दिष्ट दस नियमों में प्रथम था — 'मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है कि सद्गुरु की शरण में जावे और उनकी कृपा संपादन करने के लिए शुद्धचित्त से उनकी सेवा करे'। साथ ही एक सुपात्र भक्त को समझाते हुए महाराजी ने कहा कि 'असली सेवा है आज्ञा पालन'। यह नियम, स्पष्ट रूप से कर्तव्य तथा साधन दोनों का निर्देश करता है।

गर्मियों में भक्त उन्हें शिमला ले जाते और वे भी इसे भक्ति के प्रचार का अवसर समझकर स्वीकार करते। (अन्यथा आश्रम में तपती लू में पहली मंजिल पर बनी फूस की रावटी में उन्होंने कई वर्ष व्यतीत किए थे।) शिमला में वे जाखू के टीले पर महाराजा धौलपुर की कोठी 'धौलपुर हाउस' में ठहरते थे। वहां सत्संग होता था तथा उसमें सनातनी, आर्यसमाजी तथा सिक्ख सभी पन्थों के

लोग आते थे, कई मुसलमान और ईसाई सज्जन भी नियमित रूप से आते थे। गायत्री मन्त्र का उपदेश तथा प्रचार तो महाराजी आश्रम की स्थापना के समय से ही करते थे। आश्रम में तो गायत्री मन्त्र का कीर्तन भी होता रहता था, जो कभी कभी तो कई दिनों तक अखण्ड रूप से चलता था। एक बार शिमला में अपने सत्संग समुदाय में उपस्थित जनसमुदाय को उन्होंने मिलकर संध्या करने का निर्देश दिया। कुछ व्यक्तियों ने कहा कि महाराजी सबकी संध्याएं भिन्न-भिन्न होने से तथा समयाभाव से ऐसा संभव नहीं है, साथ ही उन्होंने प्रार्थना भी की कि आप ही कोई छोटी किन्तु पूर्ण तथा सारगर्भित संध्या बताएं। महाराजी ने स्वयं इस विषय में बाद में बतलाते हुए कहा कि 'उनकी बात को सुनकर हमने हिमालय की एक चट्टान पर बैठकर ध्यान लगाया और विचार किया तो आकाशवाणी हुई कि गायत्री का प्रचार करो'। (इस घटना से कोई यह न समझे कि ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति को भी ध्यान लगाने की आवश्यकता क्यों पड़ी। उनका स्वभाव ही ऐसा था कि श्रेय सदा भगवान् को अथवा प्रार्थना की शक्ति को देते थे। सत्य भी है कि भगवान् ही प्रेरणा के तथा समस्त क्रियाशक्ति के स्रोत हैं।) फिर उन्होंने गायत्री का मनुष्यमात्र के लिये संध्या के रूप में उपदेश किया। गायत्री का अर्थ, व्याख्या तथा माहात्म्य वहां के लोगों को समझाया। अन्य आवश्यक जानकारी यथा पांच अवसान, स्तुति, उपासना और प्रार्थना आदि अंग बतलाए। गायत्री का जप करनेवालों को आशीर्वाद दिया जो इसी पुस्तक में अन्यत्र छपा है। महाराजी ने 'सत्संग-सभा' की भी शिमला में ही स्थापना गायत्री के सर्वत्र प्रचार के उद्देश्य से की। इसके उपरान्त अत्यन्त व्यापक स्तर पर गायत्री के प्रचार-कार्य का आरंभ किया गया। लाखों की संख्या में गायत्री की पुस्तकें छपवाकर निःशुल्क वितरित कराई गईं। अकेले डॉ० गोकुलचंद्र नारंग ने ही पचास हजार पुस्तकें अंग्रेजी में छपवाईं।

गायत्री मंत्र का अधिकार मनुष्यमात्र को है तथा हिन्दुओं के लिए तो यह आवश्यक कर्तव्य है कि वे इसे अपने मन्त्र के रूप में ग्रहण करें तथा इससे उपासना करें। 'दिन में चार बार गायत्री मन्त्र से संध्या करो', ऐसा उनका आदेश था। स्त्रियों तथा शूद्रों को भी इसका अधिकार सबके समान ही है, ऐसी व्यवस्था उन्होंने दी।

संगठन हेतु एक मन्त्र होना आवश्यक है तथा हिन्दुओं के संगठन का आधार गायत्री मन्त्र ही हो सकता है, यह उनका निर्णय था। मानसिक जप अत्यन्त

प्रभावशाली है तथा उसके लिए शुद्धाशुद्ध किसी भी परिस्थिति का बंधन नहीं है — यह स्पष्ट निर्देश दिया। सामान्य जप हेतु भी शाप-विमोचन, मुद्रा-तर्पणादि का बंधन हटा इसे ऐसा सुगम बना दिया जिससे कि सभी इसे जप सकें

इनमें से कुछ व्यवस्थाएं नई हैं। नई व्यवस्था देने का अधिकार उन्हें था, ऐसा निश्चय पूर्ववर्णित उनके परिचय से हो जाना चाहिए। संशय का लेश भी न रहे इस हेतु तीन उद्धरण उनकी रचनाओं से दिए जाते हैं क्योंकि इनमें वर्णित भाव उनके सहज-सिद्ध आचरण की अभिव्यक्ति मात्र हैं (द्रष्टव्य है गीता का श्लोक — ‘सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि’)। भक्ति-मार्ग नामक लेख में उन्होंने भक्ति का आवश्यक गुण बताते हुए कहा कि — ‘अपनी वासना (इच्छा) स्थूल हो वा सूक्ष्म, किंचित् भी नहीं रहनी चाहिए। केवल परमात्मा की इच्छा को परम इच्छा समझ उसको पालन करना और अपने मिथ्या अहं का उसमें विस्मरण करना ही अन्तिम पद वा मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है’।

उपर्युक्त लेख में भक्त के आवश्यक कर्तव्य बताने के प्रसंग में लिखा कि — ‘सब सांसारिक वासनाओं का त्याग, विशेषकर काम का त्याग करना और भगवच्चरणों में अतिशय गाढ़ प्रेम, अपनी सर्व वासनाओं (इच्छाओं) के ऊपर भगवत् इच्छा का अधिकार स्थापित करना अर्थात् जितनी भी वासना (इच्छा) फुरें वह भगवत् इच्छा से प्रेरित वा भगवत् इच्छा को पूर्ण करने वाली हो और उसके विरुद्ध कोई वासना न फुरने पावे ...’।

उनके एक भजन में धर्म इस प्रकार परिभाषित है —
‘जो तोहे भावे धर्म है, दूजा सभी असार’।

यह परिभाषा तो अकेली ही महाराजी के सभी कर्मों की प्रेरणा के विषय में समस्त सन्देशों को निर्मूल करने में समर्थ है।

ब्रह्मनिष्ठ और नित्यस्वरूपस्थ महात्मा में अपनी कोई इच्छा नहीं रहती, रह सकती भी नहीं — इच्छा रहते ब्रह्म के साथ एकता, उसमें अवस्थान असंभव है। अतः ऐसे महात्माओं में परमात्मा की इच्छा ही कार्य करती है। अतएव सब सन्देश हटा, और परमात्मा की इस समय यह इच्छा है कि ‘लिंग और वर्णभेद तो क्या, धर्म का भी भेद छोड़ कर मनुष्यमात्र गायत्री जपें’, इसलिए ही उन्होंने स्वामी परमानन्द जी के माध्यम से इसका नई व्यवस्था के साथ उपदेश किया — ऐसा जानकर और समझकर सभी इससे अपना कल्याण करें।

स्वभाव से निष्पक्ष होकर भी गायत्री के प्रचार पर महाराजी का ऐसा अनुराग

था कि एक बार गुरुपूर्णिमा पर पूजा करने को आए भक्तों से कहा कि 'ऐसी पूजा से कोई लाभ नहीं, गायत्री का प्रचार करो और प्रत्येक व्यक्ति एक हजार व्यक्तियों को गायत्री मन्त्र याद कराए'। पूर्ववर्णित तथा इसी पुस्तक में छपे मनुष्य के लिए साधारण नियमों में से प्रथम (सद्गुरु शरणागति और सेवा) तथा अन्तिम (अहर्निश परमात्मा का ध्यान) नियम का पालन गायत्री जप और प्रचार से सहज साध्य है तथा मनुष्य जीवन के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति अर्थात् भगवत्प्राप्ति में तो गायत्री का अमोघ फल है ही।

उन्होंने आश्रम से छपने वाले मासिक पत्र भक्ति में सन् १९३४ ईस्वी में गायत्री मन्त्र के विषय में एक लेख प्रकाशित करवाया। इसमें मन्त्र का अर्थ, उपासना (ध्यान की विधि) तथा प्रार्थ्य (जिसके लिए प्रार्थना कि जाय) वस्तु का वर्णन है। इस मन्त्र का फल बताया गया है और इसका माहात्म्य भी विस्तारपूर्वक वर्णित है। वही इस पुस्तक के मुख्य भाग में छपा गया है।

महाराजी द्वारा निर्धारित 'मनुष्य मात्र के लिए साधारण नियम' मुख पृष्ठ के पीछे छापे हैं। गायत्री मन्त्र सम्बन्धी अन्य कुछ जानकारी भी समय-समय पर आश्रम से प्रकाशित गायत्री की पुस्तकों में छपी है, वह परिशिष्ट में इस परिचय से पहले छपी गई है। आश्रम के एक ब्रह्मचारी (प्रभुदत्त ब्रह्मचारी उपाख्य 'आनन्द मुनि') द्वारा गायत्री मन्त्र का अर्थ कविताबद्ध किया गया, वह भी छपा है। आश्रम के ही एक ब्रह्मचारी (सीताराम जी उपाख्य 'सूरदास जी') द्वारा महाराजी के गायत्री संबंधी विचारों को आधार बनाकर रचित एक भजन को भी छपा गया है। कुछ चुनी हुई बातें महाराजी द्वारा लिखित पुस्तक 'सदाचार' से भी संकलित कर छपी हैं। स्वामी कृष्णानन्द जी के अनुसार गायत्री मन्त्र का जप करनेवालों के लिए महाराजी ने जो आशीर्वाद दिया वह भी छपा है। शिमला में महाराजी की सत्संग सभा के अन्त में जो प्रार्थना गाई जाती थी वह 'प्रार्थना' नाम से पीछे के आवरण पृष्ठ पर छपी गई है। ज्ञातव्य है कि यह प्रार्थना महाराजी द्वारा रचित नहीं है, किन्तु उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। महाराजी द्वारा निर्धारित आश्रम के (अष्ट) 'उद्देश्य' भी पुस्तिका के आवरण पृष्ठ पर पीछे की ओर छापे गए हैं।